

निश्चयप्रायश्चित्त अधिकार । शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त अधिकार । १९८ कलश ।

निजात्मगुणसम्पदं मम हृदि स्फुरन्तीमिमां,
समाधि-विषया-महो क्षण-महं न जाने पुरा ।
जगत्त्रितय-वैभव-प्रलयहेतु-दुःकर्मणां,
प्रभुत्वगुणशक्तिः खलु हतोऽस्मि हा सन्सृतौ ॥१९८॥

श्लोकार्थ : अहो! मुनिराज स्वयं कहते हैं मेरे हृदय में स्फुरायमान इस निज आत्मगुणसम्पदा को-कि जो समाधि का विषय है... आहाहा! अन्तर का विषय है।

अहो! मेरे हृदय में स्फुरायमान... प्रगट इस निज आत्मगुणसम्पदा को-कि जो... आहाहा! समाधि का विषय है... आहाहा! अन्तर समाधि। मन-वचन-काया के विकल्परहित निर्विकल्प समाधि का विषय यह आत्मा है। यह आत्मा राग, पुण्य और व्यवहार का विषय नहीं है। आहाहा! निर्विकल्प / रागरहित ऐसा आत्मा, उसका विषय है। उसे मैंने पहले एक क्षण भी नहीं जाना। अरेरे! अनन्त काल हुआ। एक क्षण में मैंने यह नहीं जाना। महा सम्पदावन्त प्रभु अन्दर पड़ा है, वह निर्विकल्प समाधि का विषय है, उस विषय को मैंने अनन्त काल में कभी किया नहीं। आहाहा! दूसरे क्रियाकाण्ड के कुटारा में यह पड़ा रहा। आहाहा!

मैंने पहले एक क्षण भी नहीं जाना। वास्तव में, तीन लोक के वैभव के प्रलय के हेतुभूत... आहाहा! निमित्त से कथन करते हैं। तीन लोक के वैभव के प्रलय के हेतुभूत दुष्कर्मों की प्रभुत्वगुणशक्ति से (-दुष्ट कर्मों के प्रभुत्वगुण की शक्ति से),... दुष्टकर्मों के प्रभुत्वगुण शक्ति से, अरेरे! मैं संसार में मारा गया हूँ... अभी तक अनन्त काल.. कर्म का लक्ष्य करके, मूल तो ऐसा (कहना है)। कर्म का लक्ष्य करके कुकुर्म के जोर से इस कर्म की प्रभुता अर्थात् उसकी ओर का जो, उस प्रभुता से मैं मारा गया हूँ। अनन्त काल में मेरा जीवन चैतन्य आनन्द, वह उसके कारण हाथ नहीं आया। आहाहा! है ?

(-दुष्ट कर्मों के प्रभुत्वगुण की शक्ति से), अरेरे! मैं संसार में मारा गया हूँ (-हैरान हो गया हूँ)। कर्म का तो निमित्त से कथन है। परन्तु मेरा जो विषय है, उस पर दृष्टि नहीं देकर, पर के ऊपर दृष्टि दी, ऐसा कहना है। जो आत्मा आनन्दस्वरूप, शान्तस्वरूप है, उसका विषय जो निर्विकल्प का विषय दृष्टि का जो विषय है, वह अनादि से नहीं किया और कर्म के अन्दर के लक्ष्य के जोर से हैरान.. हैरान होकर चौरासी लाख के अवसर में मैं मर गया। आहाहा! बड़ा अरबोंपति सेठ भी मरते हुए राग की एकता में मरकर दुर्गति में जाता है। आहाहा! यहाँ लाखों रुपये का पलंग हो, उसमें सोता हो, अरबों रुपये हों और लड़के सब... अच्छे.. आत्मा का विषय जिसने किया नहीं, ऐसा कहना है। भगवान आत्मा को विषय बनाया नहीं, जिसने अन्तर्मुख होने का (कार्य) किया नहीं, वह बहिर्मुख कर्म के लक्ष्य से मर गया है, मर गया है। अनादि से हैरान हो गया है। आहाहा!

मैं संसार में मारा गया हूँ (-हैरान हो गया हूँ)। आहाहा! देखो, यह भूतकाल याद किया। गत काल में कहाँ-कहाँ भटका.. ओहोहो! वहाँ तो कुछ था नहीं। आत्मा का तत्त्व

था नहीं और बाहर में उसका कुछ नहीं... राग और द्वेष के फलरूप से संयोग (प्राप्त किये)। नारकी में संयोग का दुःख नहीं है क्योंकि संयोग उसे स्पर्श नहीं करते परन्तु संयोग पर लक्ष्य होने के कारण दुःखी है। उसका झुकाव ऐसा झुकाव है। संयोग तो स्पर्श भी नहीं करते। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को तो स्पर्श नहीं करता। आहाहा! तो वह जीव भी अपने स्वभाव को भूलकर जो प्रतिकूल शीत और उष्ण संयोगों के लक्ष्य में मर गया है। आहाहा! उसके लक्ष्य से हैरान हो गया है। यहाँ यही कहा। कुकर्म ने हैरान किया, इसका अर्थ उस कुकर्म के लक्ष्य से मैं हैरान हो गया। मेरे अपराध से हैरान हो गया हूँ, ऐसा कहा।



श्लोक-१९९

(आर्या)

भवसम्भवविषभूरुहफलमखिलं दुःखकारणं बुद्ध्वा ।

आत्मनि चैतन्यात्मनि सञ्जातविशुद्धसौख्यमनुभुञ्जे ॥१९९॥

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारि-
देवविरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्ताधिकारः अष्टमः
श्रुतस्कन्धः ।

(वीरछन्द)

भवोत्पन्न विषतरु के फल सब ही हैं दुख के कारण जान ।

चेतन में उत्पन्न विशुद्ध सौख्य का अनुभव करूँ महान ॥१९९॥

श्लोकार्थ : भवोत्पन्न (-संसार में उत्पन्न होनेवाले) विषवृक्ष के समस्त फल को दुःख का कारण जानकर मैं चैतन्यात्मक आत्मा में उत्पन्न विशुद्धसौख्य का अनुभवन करता हूँ ॥१९९॥

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था, ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्ताधिकार नाम का आठवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

श्लोक-१९९ पर प्रवचन

१९९ (श्लोक)

भवसम्भवविषभूरुहफलमखिलं दुःखकारणं बुद्ध्वा ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि सञ्जातविशुद्धसौख्यमनुभुञ्जे ॥१९९॥

श्लोकार्थ : क्या कहते हैं ? भवोत्पन्न (-संसार में उत्पन्न होनेवाले)... चाहे तो नारकी हो, चाहे तो देव हो परन्तु संसार में उत्पन्न होनेवाले। क्या ? विषवृक्ष के समस्त फल को... जहर के फल को भोगा। आहाहा! चाहे तो अरबोंपति सेठ में उत्पन्न हुआ, चाहे तो देव में उत्पन्न हुआ या चाहे तो नरक में उत्पन्न हुआ या निगोद में उत्पन्न हुआ... आहाहा! परन्तु वहाँ तो विषवृक्ष के समस्त फल को दुःख का कारण जानकर... आहाहा! उस जहर का दुःख जहर समान है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, जो पर की ओर के झुकाववाला भाव जहर है। उसे छोड़कर अब विषवृक्ष के समस्त फल को दुःख का कारण जानकर... परन्तु उन्हें दुःख का कारण जानकर। जाने बिना नहीं। आहाहा! यह तो परवस्तु जहाँ अनुकूल हुई हो, वहाँ सुखी मानता है। शरीर ठीक होवे तो सुख माने, स्त्री ठीक होवे, पैसा ठीक होवे, दुकान चलती हो, धन्धा चलता हो, पाँच-दस हजार के वेतन की नौकरी अच्छी मिली हो तो हम सुखी हैं। जहर का फल है। आहाहा!

मुमुक्षु : लौकिक मान्यता में अन्तर होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पूरा अन्तर, पूरा अन्तर है। दुनिया माने पैसेवाले को..

यहाँ तो प्रभु कहते हैं तू, आत्मा के अन्तर विषय के अतिरिक्त बाहर के किसी भी विषय में अटकना और देखने में अटकना, वह जहर का वृक्ष है। उसे मैं छोड़कर.. आहाहा! उसे मैं छोड़कर, कहा न? आहाहा! विषवृक्ष के समस्त फल को दुःख का कारण जानकर मैं चैतन्यात्मक आत्मा में उत्पन्न.. आहाहा! चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, जाननस्वभाव आत्मा। उसे मैं... आहाहा! उत्पन्न विशुद्धसौख्य का अनुभवन करता हूँ। आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। वह परसन्मुख के जहर का लक्ष्य छोड़कर मैं तो आत्मा का अनुभव करता हूँ। उसमें सुख और शान्ति है, अन्यत्र कहीं सुख और शान्ति नहीं है। आहाहा! यह अधिकार पूरा हो गया।

— ९ —

परम समाध्यधिकारः

गाथा - १२२

अथ अखिलमोहरागद्वेषादिपरभावविध्वंसहेतुभूतपरमसमाध्यधिकार उच्यते ।

वयणोच्चारणकिरियं परिचत्ता वीतरायभावेण ।

जो ज्ञायदि अप्पाणं परम-समाही हवे तस्स ॥१२२॥

वचनोच्चारणक्रियां परित्यक्त्वा वीतरागभावेन ।

यो ध्यायत्यात्मानं परम-समाधिर्भवेत्तस्स ॥१२२॥

परमसमाधिस्वरूपारख्यानमेतत् । क्वचिदशुभवञ्चनार्थं वचनप्रपञ्चाञ्चितपरमवीतराग-सर्वज्ञस्तवनादिकं कर्तव्यं परमजिनयोगीश्वरेणापि । परमार्थतः प्रशस्ताप्रशस्तसमस्तवाग्विषय-व्यापारो न कर्तव्यः । अत एव वचनरचनां परित्यज्य सकलकर्मकलङ्कपङ्कविनिर्मुक्तप्रध्वस्तभाव-कर्मात्मकपरमवीतरागभावेन त्रिकालनिरावरणनित्यशुद्धकारणपरमात्मानं स्वात्माश्रयनिश्चयधर्म-ध्यानेन टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वरूपनिरतपरमशुक्लध्यानेन च यः परमवीतरागतपश्चरणनिरतः निरुपरागसंयतः ध्यायति, तस्य खलु द्रव्यभावकर्मवरूथिनीलुण्टाकस्य परम-समाधिर्भवतीति ।

अब समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों के विध्वंस के हेतुभूत परम-समाधि अधिकार कहा जाता है ।

रे त्याग वचनोच्चार किरिया वीतरागी भाव से ।

ध्यावे निजात्मा जो, समाधि परम होती है उसे ॥१२२॥

अन्वयार्थ : [वचनोच्चारणक्रियां] वचनोच्चारण की क्रिया [परित्यक्त्वा] परित्याग कर [वीतरागभावेन] वीतरागभाव से [यः] जो [आत्मानं] आत्मा को [ध्यायति] ध्याता है, [तस्य] उसे [परमसमाधिः] परम समाधि [भवेत्] है ।

टीका : यह, परम समाधि के स्वरूप का कथन है ।

कभी *अशुभवञ्चनार्थं वचनविस्तार से शोभित परमवीतराग सर्वज्ञ का स्तवनादि

* अशुभवञ्चनार्थं=अशुभ से छूटने के लिए; अशुभ से बचने के लिए; अशुभ के त्याग के लिए ।

परम जिनयोगीश्वर को भी करनेयोग्य है। परमार्थ से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है। ऐसा होने से ही, वचनरचना परित्याग कर जो समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त है और जिसमें से भावकर्म नष्ट हुए हैं, ऐसे भाव से—परम वीतरागभाव से—त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्धकारणपरमात्मा को स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान से तथा टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान से जो परमवीतराग तपश्चरण में लीन, निरुपराग (निर्विकार) संयमी ध्याता है, उस द्रव्यकर्म-भावकर्म की सेना को लूटनेवाले संयमी को वास्तव में परम समाधि है।

गाथा-१२२ पर प्रवचन

अब नौवाँ समाधि अधिकार। परम समाधि अधिकार

वयणोच्चारणकिरियं परिचत्ता वीयरायभावेण।

जो ज्ञायदि अप्पाणं परम-समाही हवे तस्स ॥१२२॥

रे त्याग वचनोच्चार किरिया वीतरागी भाव से।

ध्यावे निजात्मा जो, समाधि परम होती है उसे ॥१२२॥

आहाहा! ऐसे समाधि शब्द तो लोगस्स में भी आता है। श्वेताम्बर में 'लोगस्स उज्जोअगरे' उसमें आता है। 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' परन्तु अर्थ की किसे खबर है। मुखाग्र हो वह हाँके जाते हैं। 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु चंदेसु निम्मलयरा, आईच्चेसु अहिय पयासयराः' लोगस्स में आता है। तिखतो और पाठ... करे न? आहाहा! उसमें यह आता है। नमोत्थुणं यहाँ कहते हैं। वचनोच्चारण की क्रिया... आहाहा! वचन की उच्चारण की क्रिया वह जड़ है। टीका, टीका ही लेते हैं।

टीका : यह, परम समाधि के स्वरूप का कथन है। कभी अशुभवंचनार्थ... क्या कहते हैं? किसी समय, कभी अशुभवंचनार्थ-अशुभ को टालने के लिए शुभभाव आता है। पुण्य का बन्धन है, वह शुभभाव आता है। समकित्ती को और आत्मज्ञानी को भी अशुभवंचनार्थ-अशुभ को छोड़ने के लिए शुभभाव आता है परन्तु शुभभाव बन्धन है, धर्म नहीं। आहाहा! कभी अशुभवंचनार्थ वचनविस्तार से शोभित... आहाहा! परमवीतराग

सर्वज्ञ का स्तवनादि... तीर्थकरदेव का स्तवन, स्तुति, गुणगान वचन द्वारा आता है। वह अशुभ टालने के लिए आता है, वह धर्म के लिए आता है - ऐसा नहीं है। आहाहा! वह शुभभाव धर्म है, ऐसा नहीं है। **अशुभवंचनार्थ=अशुभ से छूटने के लिए; अशुभ से बचने के लिए; अशुभ के त्याग के लिए।** आहाहा! शोभित परमवीतराग सर्वज्ञ का स्तवनादि परम जिनयोगीश्वर को भी... परम जिनयोगीश्वर को भी अशुभ वंचनार्थ शुभभाव आता है परन्तु वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा! भगवान की स्तुति, स्तवन, गुणग्राम...

मुमुक्षु : वह करनेयोग्य है, ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह करनेयोग्य व्यवहार से है। निश्चय से छोड़नेयोग्य है। निश्चय दृष्टि सहित अशुभ को टालने के लिए यह भाव आता है परन्तु भाव है, वह बन्धन का कारण कहा है। वह पुण्य का भाव बन्धन का कारण है, धर्म नहीं। आहाहा! है ?

परम जिनयोगीश्वर को भी... समकिति को तो आवे, पाँचवें (गुणस्थानवर्ती) को आवे। भगवान का स्तवन, गुणग्राम, वीतराग आदि का स्तवन... आहाहा! **भी करनेयोग्य है।** इस अपेक्षा से करनेयोग्य है। अशुभ टालने के लिए करने योग्य है। व्यवहार डाला है। **परमार्थ से...** अब आया। **परमार्थ से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है।** वास्तव में तो शुभभाव... प्रशस्त अर्थात् शुभभाव, अप्रशस्त अर्थात् अशुभभाव, वह **समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है।** पहले व्यवहार से करनेयोग्य कहा था, परन्तु निश्चय से वह करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! पहले तो कहा, परमजिनयोगीश्वर को भी अशुभ टालने के लिए शुभ आता है। शुभ होता है। शुभ तो सब मुनियों को होता है परन्तु **समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है।** आहाहा! एक ओर करनेयोग्य कहा और दूसरी ओर करनेयोग्य नहीं है, ऐसा कहा। व्यवहार से करनेयोग्य है, निश्चय से करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। वह तो राग है।

वे बेचारे सबेरे आये थे, वे कहते थे कि राग से तो भिन्न आत्मा है। ऐसा करके बताया था। शास्त्र सब पढ़े हैं। समयसार, प्रवचनसार, दूसरे सब शास्त्र पढ़े हैं। बहिनश्री के वचनामृत सब पढ़ा है। परन्तु उसमें यह अन्तिम सार है। राग से आत्मा भिन्न है। नरम व्यक्ति था। साढ़े तीन, साढ़े चार... आ सके नहीं। बाहर का प्रतिबन्ध...

अशुभ को टालने के लिए, कुस्थान से बचने के लिए देव, गुरु, शास्त्र की स्तुति का शुभभाव आता है। स्तुति और गुण का (शुभभाव) आता है परन्तु परमार्थ से...

आहाहा! भला और बुरा दोनों भाव समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है। यह वचनसम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! क्योंकि वचनसम्बन्धी व्यापार में शुभराग है। शुभराग। स्तुति करे, श्रवण करे, गुणग्राम करे, भक्ति करे, उसमें तो शुभराग है। वह शुभराग अशुभ टालने के लिए करनेयोग्य है, ऐसा कहा। अशुभ टालने के लिए करनेयोग्य है परन्तु निश्चय से तो दोनों छोड़ने योग्य हैं।

दो सिद्धान्त कहे। अशुभ से वंचनार्थ करनेयोग्य है। आहाहा! अशुभभाव में न जाए, इससे उसे शुभभाव आता है परन्तु वचन सम्बन्धी समस्त व्यापार वह बन्ध का कारण जानकर करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! भगवान की बड़ी स्तुतियाँ करते हैं न? श्वेताम्बर में तो बहुत करते हैं। स्तुति... क्या कहलाता है वह? आहाहा!

कहते हैं कि कदाचित्... कदाचित् है, हों! पाठ देखा, कभी... है न? सदा नहीं। कभी अशुभवंचनार्थ... भगवान की स्तुति आदि का भाव तो योगीश्वर को भी आता है। वह तो एक ज्ञान कराया है। आहाहा! परन्तु प्रशस्त-अप्रशस्त... शुभराग और अशुभराग। समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है। ऐसा होने से ही, वचनरचना परित्याग कर... आहाहा! वचन रचना को छोड़कर। आहाहा! जो समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त है... भगवान तो वचन रचना को परित्यागकर समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से... यह शुभ-अशुभ तो सब कर्म है। भगवान तो इससे-कादव से रहित है। यह शुभ-अशुभ तो कादव है। आहाहा! यह शुभ-अशुभ कादव, कीचड़ से विमुक्त है... प्रभु चैतन्य जिनस्वरूप अन्दर है। वह तो इनसे भिन्न है। आहाहा! विमुक्त है। अन्दर कीचड़ से विमुक्त है।

और जिसमें से भावकर्म नष्ट हुए हैं... जिसमें से पुण्य और पाप के परिणाम, इसका नाम भावकर्म, वह भावकर्म जिसका नाश हुआ है। ऐसे भाव से—परम वीतरागभाव से... ऐसे भाव से अर्थात् परम वीतरागभाव से। आहाहा! वचन का व्यापार, वह रागभाव है; जबकि आत्मा की ओर जाने के लिए वीतरागभाव है। आहाहा! वह भी परम वीतरागभाव से—त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्धकारणपरमात्मा को... आहाहा! त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्ध... प्रभु। वह तो अनादि-अनन्त शुद्ध चैतन्यद्रव्य अन्दर पड़ा है। वह तो पर्याय-अवस्था में विकार दिखता है। वस्तु में तो कुछ है नहीं। वस्तु तो त्रिकाल निरावरण है, परन्तु उस ओर दृष्टि नहीं की और क्रियाकाण्ड में रुक गया। क्रियाकाण्ड को विषय बनाया, भगवान को (विषय) नहीं बनाया। आहाहा! सामायिक करो, प्रोषध करो, प्रतिक्रमण

करो, परन्तु सम्यक्त्व के बिना सामायिक, प्रोषध आये कहाँ से ? वस्तु की तो खबर नहीं और वस्तु की खबर बिना समता आवे कहाँ से ? सामायिक में तो समता का लाभ चाहिए। समता का लाभ तो तब आवे कि वीतरागमूर्ति, वचन और काया की क्रिया से भिन्न है, उसका ध्यान में, ज्ञान में प्रतीति हो, पश्चात् उसमें स्थिरता हो तो सामायिक हो। आहाहा!

यह जामनगर में हुआ था (संवत्) १९८१ के वर्ष। पहले गये थे जामनगर। लोकाशा के उपाश्रय में उतरे थे। बहुत लोग आते थे... उसमें वारिया, वीरजीभाई के पिता ताराचन्दभाई, यह बात सुनी। कहा, शुभ और अशुभभाव बन्ध का कारण है। १९८२ के वर्ष की बात है। कितने हुए ? लोकाशा का उपाश्रय है, वहाँ उतरे थे और वे आवे जल्दी। प्रोषध करना हो तो सवेरे आवे। रात्रि में एक घण्टे पहले। फिर यह बात सुनते ही... क्योंकि वह तो यही बात मानी हुई और यह कही हुई। वे सूत्र पढ़ते। सूत्र साधू को पढ़ते। ताराचन्द वारिया, वीरजीभाई के पिता। वे कहे, परन्तु यह तुम (कहते हों), मन, वचन, काया की क्रिया धर्म नहीं है ? यह क्या ? कहा, पढ़ो। तुम्हारा ज्ञानसागर 'पूनातर' की ओर से प्रकाशित हुआ है। ज्ञानसागर है, वह पूनातर की ओर से प्रकाशित हुआ है, तब का है। ज्ञानसागर। उसमें क्या लिखा है ? कि मन, वचन, काया के भाव से पुण्य नामकर्म बँधता है, धर्म नहीं; इसलिए फिर मौन रह गये। फिर तो वहाँ सुना। 'चेला' गये थे। साथ में 'चेला' है न ? वहाँ भी आये थे। परन्तु यह बात यह प्ररूपणा सब करते हैं। मन, वचन, काया की शुभ की क्रिया करो। कहा, पाठ देखो। नामकर्म के चार कारण से पुण्य नामकर्म बँधता है। मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता और किसी के साथ झगड़ा नहीं। इन चार बोल से नामकर्म बँधता है। पाठ है, कहा। ज्ञानसागर में, पूनातर की ओर से प्रकाशित हुआ है तुम्हारे गाँव से। पढ़ो। मौन रह गये। यही चला है। लोगों को निवृत्ति कहाँ है। आहाहा! अनन्त काल से पुण्य और क्रिया, बहुत तो पाप छोड़कर पुण्य की क्रिया (करे), वह धर्म। जिन्दगी निष्फल, जाओ नरक और निगोद। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! त्रिकाल निरावरण भगवान अन्दर है। वह नित्य है, वह शुद्ध है। आहाहा! **कारणपरमात्मा को स्वात्माश्रित...** आहाहा! वह कारणपरमात्मा है। कौन ? यह सब आत्मा, हों! आहाहा! सब आत्मा अन्दर में कारणपरमात्मा हैं क्योंकि उसके आश्रय से कार्यपरमात्मा / अरिहन्त परमात्मा उस कारणपरमात्मा के आश्रय से होते हैं। अन्दर कारणपरमात्मस्वरूप है, उसकी एकाग्रता करने से कार्यपरमात्मा केवली होते हैं। आहाहा! है ?

त्रिकाल-निरावरण... वापस यह कैसी चीज़ है ? आत्मद्रव्य । द्रव्य अर्थात् वस्तु । त्रिकाल निरावरण है । वस्तु में आवरण नहीं है । वह तो एक समय की हालत है, उसमें राग का सम्बन्ध है । कर्म का-निमित्त का सम्बन्ध उसमें है । वस्तु तो त्रिकाल निरावरण है । आहाहा ! परम वीतरागभाव से—त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्ध... त्रिकाल शुद्ध । त्रिकाल निरावरण, ऐसा त्रिकाल शुद्ध प्रभु है । आत्मा जो है, वह तो अन्दर त्रिकाल शुद्ध है । आहाहा ! कारणपरमात्मा, वह कारणपरमात्मा है । आहाहा ! सबके आत्मा की बात है, हों ! सब आत्मा अन्दर भगवान हैं, कारणपरमात्मा हैं । कैसे जँचे ? कार्यपरमात्मा केवलज्ञान होता है । भगवान को, अरिहन्त को तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान, अनन्त आनन्द (प्रगट होता है) वह सब आया कहाँ से ? बाहर कुछ लटकता है तो आवे ? अन्दर में भरा है, पूर्ण भरा है । पूर्ण परमात्मा स्वयं है, कारणपरमात्मा है । आहाहा !

यह प्रश्न वारिया ने किया था । वीरजीभाई का त्रिभुवन है न ? वीरजी वकील का त्रिभुवन । उसने कहा, महाराज ! यह कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा कहते हो, तो कारण होवे तो कार्य तो आना चाहिए । यदि कारणपरमात्मा कहते हो तो कार्य तो आना चाहिए । कहा, परन्तु कारणपरमात्मा जिसे माने उसे या न माने उसे ? जिसने, कारणपरमात्मा है—ऐसा माना, उसे कार्य सम्यक्त्व हुए बिना नहीं रहता । आहाहा ! है, परन्तु माना कब है ? सुनने में कठिनाई पड़ी है । आहा ! तलाटी ! यह अलग प्रकार की बात है । आहाहा ! वह त्रिभुवनभाई है न ? उसने प्रश्न किया था । वीरजीभाई का लड़का है । तुम कारणपरमात्मा कहते हो, तो कारणपरमात्मा में कारण है तो कार्य आना चाहिए । परन्तु कार्य किसे आवे ? कारणपरमात्मा है, अस्ति है, सत्ता है—ऐसा स्वीकार हो, उसे कार्य आता है । कारणपरमात्मा पर नजर भी न हो, श्रद्धा न हो, राग पर और पर्याय पर श्रद्धा और कारणपरमात्मा का कार्य आवे, वह किस प्रकार आवे ? न्याय-लॉजिक से बात को समझोगे या नहीं ? आहाहा !

अन्तर कारणपरमात्मा वस्तु आत्मा है, परन्तु वह है, यह स्वीकार करे, माने, विश्वास में ले, प्रतीति में ले, अनुभव में ले, तब इसे समकित हुए बिना रहता ही नहीं । उसका-कारण का कार्य आये बिना रहता ही नहीं परन्तु कारण को स्वीकार करे तब न ? कारण का स्वीकार कहाँ है ? स्वीकार सब बाहर का है । यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, बाहर की धूल में रुक गया है । आहाहा !

मुमुक्षु : सब धन्धा छोड़ दे तो निभे कैसे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में सब है ही नहीं। आहाहा! स्वयं तो करे। दूसरे का क्या काम है? एक बार नहीं कहा था (संवत्) १९७८ के वर्ष, चूड़ा में व्याख्यान होता था। पहले से १९७४ के वर्ष से व्याख्यान चलता है न, हजारों लोग, गाँव-गाँव में लोग बहुत आते हैं। बाजार में दरवाजा है। वहाँ एक पुलिसवाला बैठा था। पुलिस सुनता है, सुनते हुए उसने फिर प्रश्न किया, महाराज! यह सब तुम त्यागी-त्यागी हो जाओ, फिर तुम्हें रोटी देनेवाला कौन रहेगा? १९७८ के वर्ष की बात है। आहाहा! २२ और ३६ कितने वर्ष हुए? - ५८ वर्ष हुए। व्याख्यान तो १९७४ के वर्ष से चलता है न, ठेठ से। आहाहा!

मैंने कहा, भाई! करोड़पति होना चाहे, वह ऐसा विचार करे कि मैं करोड़पति होऊँ तो फिर बर्तन साफ करनेवाला मजदूर कैसे रहेगा? सब करोड़पति होवें तो। ऐसा कोई विचार करता है? मैं करोड़पति होऊँ तो दूसरे भिखारी नहीं रहें, बर्तन साफ करनेवाले नहीं रहें, ऐसा विचार कभी किया है? यह तो भ्रम है। स्वयं भगवान् शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसका भान होने पर उसे सम्यग्दर्शन होता है, आनन्द का स्वाद आता है और जन्म-मरण मिट जाते हैं। सबको मिट जाते हैं, ऐसा है? आहाहा!

वचनसम्बन्धी **भावकर्म नष्ट हुए हैं ऐसे...** भाव से, परमवीतरागभाव से, वापस ऐसा। वह यह कारणपरमात्मा ज्ञात कैसे हो? कहते हैं कि भावकर्म नष्ट (करने से)। भावकर्म अर्थात् पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव को नष्ट करने से... आहाहा! और परमवीतरागभाव को उत्पन्न करने से। आहाहा! परमवीतरागभाव को उत्पन्न करने से **त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्ध...** तीनों काल निरावरण भगवान् आत्मा अन्दर है और नित्य है और शुद्ध है। उस **कारणपरमात्मा को स्वात्माश्रित...** उसका आश्रय करे, उसे निश्चय धर्मध्यान होता है। आहाहा! वह परमात्मा जो त्रिकाल निरावरण, अखण्ड, नित्य, वीतरागभाव से ही वह ज्ञात हो, ऐसा है। रागभाव से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! एक-एक गाथा में... **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान...** पर के आश्रय से हो, वह निश्चयधर्मध्यान है ही नहीं। वह पुण्यबन्ध का कारण है। भगवान् आत्मा स्व आत्मा के आश्रय से-अवलम्बन से-आधार से-जो परिणाम प्रगट होते हैं, वह धर्मध्यान है। आहाहा! इसलिए बात में बहुत अन्तर लगता है।

वस्तु तो यह है। अनन्त काल गया परन्तु इसने इस चीज को ध्यान में, ज्ञान पर बात ली नहीं। ज्ञान पर यह बात ही नहीं ली। आहाहा! जिस ज्ञान पर बात नहीं ली, वह ज्ञान

अन्तर में कैसे झुक सकेगा ? क्या कहा, समझ में आया ? जिसने वर्तमान ज्ञान पर भी, यह बात ऐसी है-ऐसा ध्यान पर नहीं लिया... आहाहा ! वह ज्ञान आत्मा की ओर कैसे झुक सकेगा ? वह तो राग की ओर झुककर संसार में भटकेगा । आहाहा ! देवीलालजी ! श्वाँस चढ़ जाये ऐसा है । थकान उतर जाये ऐसा है । आहाहा ! भाषा कैसी की है !

शुभ-अशुभभाव को नष्ट करके, परम वीतरागभाव से त्रिकाल निरावरण नित्य शुद्ध कारणपरमात्मा का स्वाश्रय लेकर... आहाहा ! स्व-आश्रय लेकर आया न ? निश्चयधर्मध्यान से... आहाहा ! इस निश्चयधर्मध्यान से तथा टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान से... यह दूसरी बात । पहले धर्मध्यान कहा, दूसरा शुक्लध्यान । आहाहा ! शुद्धकारणपरमात्मा को स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान से तथा टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान... अभी यह शुक्लध्यान नहीं है । टंकोत्कीर्ण ज्ञायक... टंकोत्कीर्ण अर्थात् शाश्वत् । ज्ञायक प्रभु अन्दर जाननहार.. जाननहार.. जाननहार.. जाननहार.. आहाहा !

एक स्वरूप में... ज्ञायकस्वभाव एक स्वरूप है, उसमें द्विविधा नहीं है । उसमें द्विविधा अर्थात् द्रव्य और पर्याय दो भेद भी नहीं हैं । आहाहा ! अकेला ज्ञायक चैतन्य बिम्ब प्रभु ! आहाहा ! ऐसी बात ! जैन में जन्मे उन्हें भी कान में नहीं पड़ती तो अन्य को तो बेचारे को कहाँ सत्य बात (कान में पड़े) ? सब फेरफार बहुत, भाई ! यह तो बहुत वर्ष से तो कहते आये हैं न ! आहाहा ! कितनों को निश्चय लगता है-यह तो निश्चय है, यह तो एकान्त निश्चय है । व्यवहार आता नहीं । व्यवहार आता नहीं कहा नहीं ? अशुभ वंचनार्थ किसी समय व्यवहार आता है और वह करनेयोग्य है, ऐसा भी कहा । किसी समय (अर्थात्) सदा नहीं । सदा करनेयोग्य होवे तो इन शुभाशुभ विकल्पों से छूटकर वचन का सम्बन्ध छोड़कर अन्तर में स्व-आश्रित जाना, कारणपरमात्मा नित्य शुद्ध जो भगवान, उसका आश्रय लेकर अन्दर जाना । आहाहा ! वह पुण्य के वचन के विकल्प का आश्रय न लेना । आहाहा ! ऐसा मार्ग ।

स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान से तथा टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान से... शाश्वत् ज्ञायकस्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान । लीन-एकाकार । धर्मध्यान में थोड़ा लीन है । शुक्लध्यान में विशेष (लीन है) । जो परमवीतराग तपश्चरण में लीन,... उस परमवीतरागभाव में लीन । वह परमवीतरागभाव, वह तपश्चर्या । आहाहा ! रागभाव, वह अतपस्या और राग से आत्मा भिन्न पड़कर वीतरागभाव से लीन हो, वह

तपश्चरण, वह आत्मा की तपस्या है। बाकी आत्मा के वीतराग की ओर झुकाव बिना जो तपस्या (करे), वह सब लंघन है। आहाहा! परमवीतराग तपश्चरण में... भाषा कैसी ली है। परमशुक्लध्यान से जो परमवीतराग तपश्चरण... आहाहा! यह शुक्लध्यान, वह परम तपस्या है। आहाहा! तपस्या का अर्थ स्वरूप की शुद्धि की वृद्धि होना और अशुद्धि का नाश होना, इसका नाम तपस्या है। यह तो अभी आत्मा की तो खबर नहीं होता कि आत्मा कौन है? तपस्या करने लग पड़े। वर्षीतप और... आहाहा! परमवीतराग तपश्चरण... भाषा कैसी है! परमवीतरागभाव, वह तपस्या है। आहाहा! राग, वह अतपस्या है। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग (होवे)। अपवास करके अपवास करता हूँ, ऐसा राग वह तपस्या नहीं है। आहाहा! मैंने छठ किया, मैंने अट्टम किया, मैंने आठ दिन अपवास किये। वह तो विकल्प / राग है। राग, वह तपस्या नहीं है। उसमें स्वात्मा का आश्रय नहीं है। आहाहा! जिसमें स्वात्मा का आश्रय नहीं, उसे धर्मध्यान नहीं है। उग्ररूप से स्वात्मा का आश्रय ले, उसे शुक्लध्यान है। आहाहा! ऐसी बात है। यह समाधि अधिकार है।

लोगस्स में आता है, लोगस्स में नहीं? मुखाग्र किया हो तो। 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' लोगस्स में आता है। यह तो दस वर्ष की उम्र से किया हुआ है, यह तो (अभी तो) ९१ वर्ष हुए। ८१ वर्ष से नवकार किया। नवकार तिक्खुत्तो यह सब। हमारे उमराला में पाठशाला चलती थी। एक अन्ध सोमचन्द भगत थे। वे पढ़ाते थे। तब, हों! उस दिन से यह सब परीक्षा देते थे। सामायिक, प्रतिक्रमण सब। आहाहा! प्रतिक्रमण वहाँ दुकान पर मैं पालेज में कराता था। पर्यूषण में आठ दिन, हों! फिर कुछ नाम-बाम नहीं। आठ दिन पर्यूषण होवे तो शाम को सब इकट्ठे होकर प्रतिक्रमण करे और मानो हो गया धर्म। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मिथ्यात्व बड़ा पाप है, यह गया नहीं। राग करते हुए धर्म होता है, यह मिथ्यात्व है, महापाप। यह नरक और निगोद का मूल है। मिथ्यात्व ही संसार है। आता है न? मिथ्यात्व, यह भटकने का संसार है। बहुत जगह अर्थ आता है। आहाहा! मिथ्यात्व किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। यह राग की क्रिया, वचन की, वाणी की..

मुमुक्षु : अपने धर्म में न हो वे सब मिथ्यादृष्टि।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सब मिथ्यादृष्टि परन्तु जैनधर्म में रहे हुए हों, बाड़ा में पड़े हों, वे तुम मिथ्यादृष्टि हो। आहाहा!

अन्तर में राग से रहित स्वाश्रय करे, उसे जघन्य श्रेणी का निश्चयधर्मध्यान होता है और उत्कृष्टरूप से वीतरागभाव से स्वाश्रय करे, उसे शुक्लध्यान होता है। आहाहा! ऐसा तो तुम्हारे पिता रामजीभाई ने वहाँ सुना नहीं था। जाते थे, सामायिक करते और गाते। जज थे। नहीं? कहाँ?

मुमुक्षु : हिम्मतनगर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात थी ही नहीं। क्या करे? वह बेचारा होशियार था। बहुत मस्तिष्कवाला था, इसका पिता रामजीभाई। परन्तु यह बात नहीं थी, क्या करे? आहाहा! अभी भी सुनकर कितनों को तो ऐसा होता है कि ऐसा! ऐसा कब हो तब? परन्तु ऐसा हुए बिना जन्म-मरण मिटे ऐसा नहीं है। मर जा तेरा क्रियाकाण्ड करके। अपवास और रात्रिभोजनत्याग, शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य पाले, वह धर्म नहीं; वह तो शुभभाव है। आहाहा! ब्रह्मचर्य तो उसे कहते हैं, ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द निरावरण, उसमें चरना, इसका नाम ब्रह्मचर्य है। आहाहा! प्रत्येक की व्याख्या अलग है, प्रभु! आहाहा!

पद्मनन्दि का नहीं कहा था? पद्मनन्दि शास्त्र है। उसमें ब्रह्मचर्य की व्याख्या ऐसी वर्णन की है। बहुत वर्णन की है कि तुम्हारी काया से ब्रह्मचर्य पालो, वह ब्रह्मचर्य नहीं है। मन, वाणी और काया से ब्रह्मचर्य पालन करो कि हम आजीवन बालब्रह्मचारी हैं। बालब्रह्मचारी, वह धर्म नहीं है। आहाहा! वह तो राग, शुभराग है। अन्तर चैतन्य आनन्दमूर्ति में रमणता करने से जो आनन्द आवे, उसे निश्चय ब्रह्मचर्य कहने में आता है। आहाहा! पद्मनन्दि पंचविंशति ग्रन्थ / शास्त्र है। उसमें बहुत वर्णन किया है। (वर्णन) करके फिर ब्रह्मचर्य का बहुत वर्णन करते हुए साधारण युवक मनुष्य और जवान अवस्था, जवान स्त्री हो, जवानी में पैसा-वैसा ठीक हो, उसे ऐसी बात (ठीक न लगे) तो मुनिराज कहते हैं कि मैंने यह ब्रह्मचर्य की व्याख्या की है, वह तुम्हें न रुचे तो माफ करना। मैं मुनि हूँ, मुझसे क्या लगे? मेरे पास है, वह आयेगा। पद्मनन्दि पंचविंशतिका में ऐसा कहा है।

हजारों शास्त्र देखे हैं। आहाहा! अन्तिम २६ वाँ अधिकार है। नाम पद्मनन्दि पंचविंशति है परन्तु २६वाँ ब्रह्मचर्य का अधिकार है, गाथाएँ थोड़ी हैं, परन्तु वर्णन बहुत है। मन-वचन-काया से ब्रह्मचर्य (पालन करे), वह ब्रह्मचर्य नहीं। आत्मा के आश्रय से जो अन्दर रमणता होती है और राग छूटता है तथा अन्दर में लीनता होती है, वह ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें चर्य अर्थात् रमणता, इसका नाम ब्रह्मचर्य है; बाकी सब अब्रह्मचर्य है। आहाहा! बात-बात में अन्तर। (ऐसा) वे कहते हैं न, 'आनन्द कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक बातें तो न मले... एक लाखे न मले, एक त्राम्बा ना तेर। बातें बातें फेर।' इस प्रकार यह बात-बात में अन्तर है। दुनिया की मान्यता और वीतराग की मान्यता में बात-बात में अन्तर है। आहाहा!

एक स्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान से जो परमवीतराग तपश्चरण में लीन,... भाषा देखो। परमशुक्लध्यान से जो परमवीतराग तपश्चरण में लीन, निरुपराग (निर्विकार) संयमी ध्याता है,... अन्दर वस्तु को ध्यान में लिया है और ध्यान करता है। उस द्रव्यकर्म-भावकर्म की सेना को लूटनेवाले... आहाहा! वह तो द्रव्यकर्म का-जड़ का भी नाश हो जाता है और पुण्य-पाप भावकर्म है, उसका भी स्वाश्रय-ध्यान करने से नाश हो जाता है। इसलिए वास्तविक ध्यान उस स्व का आश्रय लेना वह है। चैतन्य भगवान अन्दर विराजता है। पूर्णानन्द का नाथ त्रिकाल निरावरण है, अखण्डानन्द है। उसका ध्यान करने से द्रव्यकर्म और भावकर्म का नाश होता है, द्रव्यकर्म अर्थात् ज्ञानावरणी आदि जड़। भावकर्म अर्थात् पुण्य और पाप। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म लगे। पूरे दिन संसार का करना। संसार का करना, संसार में स्त्री-पुत्र का करना, छह-सात घण्टे सोना, वह इसमें कब निवृत्त कब हो? निर्णय करने को निवृत्त कर हो? घण्टे भर समय मिले तो जिसका जिस सम्प्रदाय में हो, वहाँ सुनने जाये तो कुगुरु उसका घण्टा भर लूट ले, उसे ऐसा कहे कि तू व्रत कर, उपवास कर और यह कर तथा वह कर। आहाहा! (निर्विकार) संयमी ध्याता है। वह ध्यान करनेवाला तो यह संयमी होता है। आहाहा!

उस द्रव्यकर्म-भावकर्म की सेना को लूटनेवाले संयमी को वास्तव में परम समाधि है। आहाहा! 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु' लोगस्स में आता है। समाधि (अर्थात्) उन बाबा की समाधि नहीं। यहाँ तो उपाधि, यह संयोग। संयोग से रहित निरुपाधि—उपाधि से रहित। अन्तर की राग की उपाधि, वह भी उपाधि। उससे रहित, मन की उपाधि से रहित, काया की उपाधि से रहित, अन्दर आत्मा और स्वभाव में एकाकार होना, वह उपाधिरहित है। आहाहा! उसके बिना तो सब उपाधि है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि द्रव्यकर्म-भावकर्म की सेना... आहाहा! पुण्य और पाप के

ढेर उत्पन्न हों और कर्म के ढेर बँधें। आहाहा! ऐसी सेना को लूटनेवाले संयमी को वास्तव में परम समाधि है। आहाहा! आधि-व्याधि और उपाधि से रहित, वह समाधि है। आधि, व्याधि, व्याधि अर्थात् शरीर का रोग आदि। आधि अर्थात् मन में विकल्प और पुण्य-पाप के विकल्प हों वह। उपाधि, आधि, व्याधि तीन से रहित। आहाहा! उपाधि बाहर की; व्याधि शरीर की; आधि मन-विकल्प की। उपाधि, व्याधि और यह अन्तर.. क्या कहा? आधि, आधि, व्याधि, उपाधि से रहित वह समाधि है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

भगवान अन्दर निरावरण में जिसे उपाधि संयोगी चीज़ है स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, वह तो सब पर पर, वह उपाधि है। उससे रहित। पश्चात् व्याधि (अर्थात्) शरीर में कुछ फेरफार रहा करे तो उसका ध्यान रखा करता है। उसे ऐसे सम्हालना, उसे ऐसे सम्हालना, उसमें ऐसा सम्हालना, वह व्याधि है। आधि—अन्दर में संकल्प और विकल्प पुण्य और पाप हों, वह आधि। वह आधि, व्याधि, उपाधि तीन से रहित, वह समाधि है। आहाहा! बातों-बातों में अन्तर है। निर्णय करने की फुरसत नहीं मिलती। जिन्दगी चली जाती है, मरण के नजदीक जाता है। आहाहा! देह छूटने को समय नजदीक जाता है, जो टाईम बीतता है, वह देह छूटने का टाईम निश्चित है। केवली भगवान देखते हैं और इसके आयुष्य का निश्चित है। जिस क्षेत्र में, जिस निमित्त से, जिस संयोग से देह छूटनेवाली है, वह छूटेगी ही। उसके छूटने का काल मृत्यु के समीप जाता है। आहाहा! तथापि इसे मृत्यु से पहले क्या करना है, इसकी दरकार और गरज नहीं करता। आहाहा!



श्लोक-२००

अब, इस १२२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं :

(वंशस्थ)

समाधिना केनचि-दुत्तमात्मनां,
हृदि स्फुरन्तीं समतानुयायिनीम् ।
यावन्न विद्मः सहजात्म-सम्पदं,
न मादृशां या विषया विदामहि ॥२००॥

(वीरछन्द)

उत्तम आत्माओं के उर में प्रगटरूप यह कोई परम।
 अकथनीय इस परम समाधि द्वारा अनुभव करें न हम॥
 जब तक समता की अनुगामी अनुपम आत्मसम्पदा का।
 तब तक हम जैसों का है जो विषय न अनुभव में आता ॥२००॥

श्लोकार्थ : किसी ऐसी (-अवर्णनीय, परम) समाधि द्वारा उत्तम आत्माओं के हृदय में स्फुरित होनेवाली, समता की ^१अनुयायिनी सहज आत्मसम्पदा का जब तक हम अनुभव नहीं करते, तब तक हमारे हमारे जैसों का जो ^२विषय है, उसका हम अनुभवन नहीं करते ॥२००॥

श्लोक-२०० पर प्रवचन

अब, इस १२२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं :

समाधिना केनचि-दुत्तमात्मनां,
 हृदि स्फुरन्तीं समतानुयायिनीम् ।
 यावन्न विद्मः सहजात्म-सम्पदं,
 न मादृशां या विषया विदामहि ॥२००॥

श्लोकार्थ : आहाहा ! किसी ऐसी (-अवर्णनीय, परम) समाधि द्वारा... आहाहा ! उत्तम जब तक हम अनुभव नहीं करते। मुनिराज ऐसा कहते हैं.. आहाहा ! पुरुषार्थ का जोर उठाते हैं। किसी ऐसी (-अवर्णनीय, परम) समाधि... वर्णन में न आवे, ऐसी समाधि। वर्णन जड़ है और समाधि चैतन्य है। शान्त और वीतराग है। आहाहा ! ऐसी (-अवर्णनीय, परम) समाधि द्वारा उत्तम आत्माओं के... उत्तम आत्मा के हृदय में स्फुरित होनेवाली,... प्रगट होनेवाली समता की अनुयायिनी... आहाहा ! समता के साथ रहनेवाली सहज आत्मसम्पदा का... स्वाभाविक आत्मसम्पदा। आहाहा ! मुनिराज कहते हैं कि वह हमारा

-
१. अनुयायिनी=अनुगामिनी; साथ-साथ रहनेवाली; पीछे-पीछे आनेवाली। (सहज आत्मसम्पदा समाधि की अनुयायिनी है।)
 २. सहज आत्मसम्पदा मुनियों का विषय है।

विषय है। मुनिराज कहते हैं कि हमारा विषय तो वह है। कौन ?

ऐसी (-अवर्णनीय, परम) समाधि द्वारा उत्तम आत्माओं के हृदय में स्फुरित होनेवाली, समता की अनुयायिनी सहज आत्मसम्पदा का जब तक हम अनुभव नहीं करते, तब तक हमारे जैसों का जो विषय है,... आहाहा! मुनि कहते हैं कि मेरा विषय तो अन्दर त्रिकाली को विषय करना, वह हमारा विषय है। पुण्य और पाप तथा व्यवहार वह हमारा विषय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? धर्मात्मा का विषय अर्थात् ध्येय। परमात्मा, कारणपरमात्मा रागरहित निरावरण परमात्मा, वह धर्मी का ध्येय है। आहाहा! मुनिराज कहते हैं कि अरे! हमारा विषय तो वह है। आहाहा!

समता की अनुयायिनी सहज आत्मसम्पदा का जब तक हम अनुभव नहीं करते,... छठे (गुणस्थान में) जरा विकल्प उठता है न? इसलिए कहते हैं। आत्मा में आकर उसका अनुभव जब तक नहीं करते... आहाहा! तब तक हमारे हमारे जैसों का जो विषय है,... तब तक हमारे हमारे जैसों का जो विषय है,... आहाहा! मुनिराज कहते हैं कि मुनि का विषय क्या है? पंच महाव्रत, दया और दान, यह उनका विषय नहीं है। आहाहा! विषय अर्थात् ध्येय। अन्दर त्रिकाल निरावरण परमात्मस्वरूप, वह धर्मी का ध्येय और विषय है। धर्मी का वह ध्येय और वह विषय है। उस विषय में जाना है। विषय अर्थात् वह विषयाविष नहीं-पाँच इन्द्रिय के विषय, वह नहीं परन्तु विषय अर्थात् वह ध्येय करनेयोग्य। आहाहा! हमें तो ध्येय करनेयोग्य तो आत्मा है। अरे रे! उसे हम पूर्ण अनुभव नहीं करते। आहाहा! है?

विषय है, उसका हम अनुभव नहीं करते। सातवाँ आवे तब अनुभव होता है न? छठवें गुणस्थान में विकल्प आता है, उसका निषेध करते हैं। आहाहा! हमारा विषय तो अन्दर पूर्ण अनुभव करना, वह है परन्तु उसमें स्थिर नहीं रह सकते और विकल्प आता है, परन्तु हमारा विषय वह नहीं है। हमारा विषय तो अन्दर ध्यान में जाना, वह विषय है। आहाहा! विशेष कहा जायेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)